Gyanvividha, Vol.-3; Issue-3 (July-September) 2026 : PP-111-117

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान विषयों की अंतर्राष्ट्रीय सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध-पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-6.125
Vol.-3; Issue-3 (July-Sept.) 2026
Page No.- 111-117
©2026 Gyanvividha
DOI : 10.71037/gyanvividha.v3i3.17
https://journal.gyanvividha.com

Author's :

डॉ. श्वेता दीप्ति

अध्यक्ष, हिन्दी केन्द्रीय विभाग,
त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल.

Corresponding Author :

डॉ. श्वेता दीप्ति

अध्यक्ष, हिन्दी केन्द्रीय विभाग,
त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल.

हिन्दी साहित्य में नारीवाद का स्वरुप

शोध-सार : आज के मुख्यधारा नारीवाद की प्रकृति–प्रवृत्ति चाहे जो भी हो, औरत की प्रकृति–प्रवृत्ति अपने शोषण के पहले दिन से ही प्रतिरोध कर रही है और आज भी है। औरत एक जिन्दा मनुष्य है जिसने जड़ता के किसी भी हमले के सामने घुटने टेकना नहीं सीखा है। औरत दुनिया के हर कोने में प्रतिरोध कर रही है। इसके लिए वह परम्परागत प्रतिरोध संघर्ष के रुपों रास्तो के साथ साथ नयी पहलकदमियों की राह भी बना रही है।

माना गया है कि नारीवाद की परिकल्पना पश्चिम की देन है। नारीवादी लेखन की शुरुआत भी वहीं से हुई है। किन्तु इसी संदर्भ में अगर हिन्दी साहित्य की चर्चा की जाए तो हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा कृत 'श्रृंखला की कड़ियाँ' नारीवादी लेखन के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेजÞ है। मध्यकालीन साहित्य में अगर देखें तो अक्क महादेवी, मीरा आदि ऐसी समर्थ लेखिका हुईं हैं जिनकी रचनाएँ नारीवादी लेखन के पर्याय हैं। नारीवादी लेखन की परम्परा को वर्तमान समय में कई समर्थ लेखक–लेखिकाओं ने अत्यंत सशक्त और सार्थक बनाया है।

नारीवादी लेखन की दृष्टिकोण से हिन्दी का उपन्यास और कथा–साहित्य अत्यंत समृद्ध और सार्थक है। इस्मत चुगताई के 'कागजी है पैरहन' से भारतीय नारीवादी लेखन का प्रारंभ माना जा सकता है। उपन्यास एवं कथा साहित्य में साठोत्तरी हिन्दी नारीवादी लेखन में जो नाम बुलंदियों को छूते हैं, उन में कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, प्रभा खैतान, मैत्रेयी पुष्पा, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, राजी सेठ, नासिरा शर्मा, कृष्णा अग्निहोत्री, शशिप्रभा शास्त्री, सूर्यबाला, कुसुम अंसल, कमल कुमार, अलका सरावगी, मेहरुन्निसा परवेज, लवलीन, लता शर्मा, गीतांजलिश्री, कृष्ण बलदेव वैद, सुरेन्द्र वर्मा, चन्द्रकान्ता, सत्येनकुमार, तहमीना दुर्रानी आदि महत्त्वपूर्ण नाम हैं। जिनका साहित्य नारीवादी लेखन का आधार स्तम्भ है। प्रस्तुत आलेख में नारीवादी लेखन पर संक्षिप्त चर्चा की गई है।

शब्द कुंजी : नारीवाद, सशक्तिकरण, महिला लेखन, नारी शोषण, पुरुष वर्चस्व।

प्रस्तावना : किसी भी मानव समाज की महिलाओं के बिना कल्पना नहीं की जा सकती है फिर भी प्रत्येक समाज और संस्कृति में कुछ ऐसे कारक या मान्यताएं रही हैं जिन्होंने नारी की सामाजिक स्थिति को न केवल कमजोर किया है बल्कि उनके मानव अधिकारों या प्राकृतिक अधिकारों से उन्हें वंचित कर दिया। विश्व की इन्हीं शोषणकारी प्रवृतियों ने एक नवीन विचारधारा को जन्म दिया जिसे वर्तमान में नारीवाद के रूप में जाना जाता है। नारीवादी विमर्षों एवं आंदोलनों का नेतृत्व प्रमुख रूप से महिलाओं द्वारा ही किया गया। ये नारीवादी नेत्री विश्व के विभिन्न देशों, प्रजातियों, समाजों, समुदायों का प्रतिनिधित्व करती हैं और नारीशोषण के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द कर नारी के साथ किये जाने वाले भेदभाव, उत्पीड़न और शोषण को मिटाने का आह्वान करती हैं। इन वैचारिक आंदोलनों से वर्तमान समय में नारी जीवन को बेहतर बनाने में मदद मिल सकती है। नारीवाद की व्याख्या मुख्य रूप से दो अर्थों में की जाती है। पहली संकुचित अर्थ में, एक राजनैतिक विचारधारा के रुप में नारीवाद महिलाओं के द्वारा महिलाओं के लिए समानता हेतु किया गया एक सामाजिक आंदोलन है जो लिंगवादी सिद्धांत, पुरुष प्रभुत्व, वर्चस्व और महिलाओं के सामाजिक शोषण की समाप्ति पर बल देता है। दूसरी, विस्तृत अर्थों में नारीवाद कई भिन्न किंतु अन्तर्संबंधित संकल्पनाओं का एक पुंज है जिसका प्रयोग लिंग की सामाजिक यथार्थता तथा लिंग असमानता की उत्पत्ति प्रभाव एवं परिणामों के अध्ययन, विश्लेषण एवं विवेचन में किया जाता है। 'सन् 1547 में 'हेकवीर' ने स्त्रियों के लिए स्वतंत्रता और समानता का अधिकार प्रकट किया। क्रांति के पिता रुस के लेनिन ने नारी दासत और गुलामी के विरोध में आवाज उठायी। उन्होंने कहा कि नारी की उन्नति तभी संभव है, जब सारा परिवार नारी की महानता जानते हों।'[1]

महिलावादी आंदोलन के इतिहास की शुरुआत मूलतः फ्रांस की क्रांति के आदर्शों में छुपी है। फ्रांस की क्रांन्ति ने महिलावाद की प्रथम लहर को उत्पन्न किया और महिलाओं को क्रांति में सहभागी होने की प्रेरणा दी। 'ब्रिटेन में सन, 1972 में प्रकाशित 'मेरी बूलस्टोनक्राफ्ट' की पुस्तक 'ए विनडिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वूमन' ने नारीवाद की पहली लहर को जागृत किया।'[2]

इस पुस्तक में शिक्षा, राजनीति और काम के अवसरों के समान महिला अधिकारों का पुरजोर समर्थन किया। 'नारी मुक्ति आंदोलन का सूत्रधार मेरीवाल स्टोन क्राफ्ट ने 18वीं शताब्दी में पहली बार इंग्लैंड में नारी के अधिकारों के लिलए आवाज उठायी। 1806–1873 में जान स्टुअर्ट मिल ने नारी मुक्ति के लिए इंग्लैंड में नारे लगाए थे। उन्होंने अपनी रचना 'द सब्जेक्सन ऑफ विमन' में नारी अधिकारों के बारे में लिखा। केरोलिन नार्टन ने नारी मुक्ति आंदोलन इंग्लैंड में चलाया था।'[3]

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद 1945 ई. को पेरिस में वीमेंस इंटरनेशनल डेमा्क्रटिक फेडरेशन की स्थापना की गई थी। विश्व स्तर पर संगठित होने के लिए सभी देशों की स्त्रियों को आमंत्रण भेजा गया था। इन सबको निरस्त्रीकरण और शांति के पक्ष में अधिकारों की लड़ाई लड़ने का आदेश दिया गया था। अनेक महिला संगठन इस आंदोलन को प्रोत्साहन देने के लिए सामने आए थे। जिसमें नाऊ(नेशनल आर्गनाइजेशन ऑफ वीमेन) अग्रणी संस्था थी। इसी आंदोलन के समय फ्रेंच वकील गिजेल हलीमी ने 'औरत का मुकदमा' नामक पुस्तक लिखी। उन्होंने आंदोलन को विवेक की ओर मोड़ने की कोशिश की थी। हलीमी के अनुसार, एक खास उम्र में विवाह जरुर हो जाना चाहिए। बच्चे की माँ बनना जरुरी है, अन्यथा स्त्रीत्व अपूर्ण है।[4]

हलीमी का कथन है, वास्तव में स्त्रियों की मुक्ति स्त्रियों से ही संभव है। पहले महायुद्ध के बाद ब्रिटेन में स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त हुआ। वास्तव में साहित्य के क्षेत्र में बेट्टी फ्राइडन की पुस्तक 'द फेमिनन मिस्टिक' ने नारी आंदोलन को जन्म दिया था। साइमन दी वुवा की पुस्तक 'द सेकेंड सेक्स' में स्त्रियों को वासना पूर्ति के साधन के रूप में चित्रित किया गया है। आंदोलन के समय केट मिलेट की पुस्तक 'सेक्सुअल पोलिटिक्स' ने आंदोलन को उग्र रूप

प्रदान किया था।

भारत में भी उन्नीसवीं शताब्दी में कुछ समाज सुधारकों द्वारा महिलाओं की परिस्थिति में सुधार लाने का प्रयास किया गया जिसमें राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्रीमति एनीवीसेन्ट के अतिरिक्त थियोसोफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन जैसी अनेक संस्थाओं ने स्त्री शिक्षा तथा महिलाओं की अन्य समस्याओं (विवाह की आयु, विधवा–विवाह आदि) के समाधान में योगदान दिया। 'भारत के सुधारवादी आंदोलन का लक्ष्य था, नारी जीवन को सुधारना। बंगाल में ब्रह्म समाज, बंबई में प्रार्थना समाज, उत्तर भारत और पंजाब में आर्य समाज ने भी अपने कार्यों में नारी जागरण और समाज सुधार को प्रमुख स्थान दिया।'[5]

नारीवाद की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न समाजशास्त्रियों, मानवशास्त्रीयों एवं राजनीतिज्ञों ने विभिन्न सिद्धांतों की स्थापना की है जिन्हें नारीवादी सिद्धान्त कहा जाता है। नारीवादी सिद्धान्त महिलाओं और पुरुषों दोनों के लिए समानता की बात करते हैं, किंतु इसके लिए वे विभिन्न तरीके अपनाते हैं, जैसे–उदारवादी नारीवाद, माक्र्सवादी नारीवाद, रेडीकल नारीवाद और उत्तर–आधुनिक नारीवाद।

यों तो माना जाता है कि नारीवाद की परिकल्पना पश्चिम की देन है। नारीवादी लेखन की शुरुआत भी वहीं से हुई है। किन्तु इसी संदर्भ में अगर हिन्दी साहित्य की चर्चा की जाए तो हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा कृत 'श्रृंखला की कड़ियाँ' नारीवादी लेखन के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेजÞ है। मध्यकालीन साहित्य में अगर देखें तो अक्क महादेवी, मीरा आदि ऐसी समर्थ लेखिका हुईं हैं जिनकी रचनाएँ नारीवादी लेखन के पर्याय हैं। नारीवादी लेखन की परम्परा को वर्तमान समय में कई समर्थ लेखक–लेखिकाओं ने अत्यंत सशक्त और सार्थक बनाया है।

नारीवादी लेखन की दृष्टिकोण से हिन्दी का उपन्यास और कथा–साहित्य अत्यंत समृद्ध और सार्थक है। इस्मत चुगताई के 'कागजी है पैरहन' से भारतीय नारीवादी लेखन का प्रारंभ माना जा सकता है। उपन्यास एवं कथा साहित्य में साठोत्तरी हिन्दी नारीवादी लेखन में जो नाम बुलंदियों को छूते हैं, उन में कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, प्रभा खैतान, मैत्रेयी पुष्पा, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, राजी सेठ, नासिरा शर्मा, कृष्णा अग्निहोत्री, शशिप्रभा शास्त्री, सूर्यबाला, कुसुम अंसल, कमल कुमार, अलका सरावगी, मेहरुन्निसा परवेजÞ, लवलीन, लता शर्मा, गीतांजलिश्री, कृष्ण बलदेव वैद, सुरेन्द्र वर्मा, चन्द्रकान्ता, सत्येनकुमार, तहमीना दुर्रानी आदि महत्त्वपूर्ण नाम हैं। जिनका साहित्य नारीवादी लेखन का आधार स्तम्भ है।

हिन्दी नारीवादी उपन्यास लेखन में स्त्री लेखिका के साथ ही पुरुष लेखकों का योगदान भी कुछ कम नहीं है। यशपाल के 'दिव्या' उपन्यास में नारी स्वतंत्रता का अक्स काफी चटख है। तो भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' उपन्यास पाप–पुण्य के सवालों को उठाते हुए उसमें स्त्री की भूमिका पर विचार करता है। इसके अलावा कृष्ण बलदेव वैद का 'नर–नारी', सुरेन्द्र वर्मा का 'मुझे चांद चाहिए', सत्येनकुमार का 'नदी को याद नहीं', धर्मेन्द्र गुप्त के उपन्यास 'रंगी हुई चिड़िया' में स्त्री–चेतना के विविध रंग लक्षित होते हैं। लेकिन इसके बावजूद महिला उपन्यासकारों की तो बात ही कुछ और है। हिन्दी में राजेन्द्र यादव की 'एक कटी हुई कहानी' तथा बृजेश्वर मदान की 'जूही' फेमिनिस्ट कहानियों की बढ़िया मिसालें हैं। यही तो साहित्य सृजन का करिश्मा है कि मर्द से मर्द लेखक भी जाने–अनजाने शुद्ध नारीवादी कहानी लिख सकता है।

प्रायः यह समझा जाता है कि महिला लेखिका के लेखन का विषय सिर्फ घर परिवार तक ही सीमित रहता है उनके लेखन का विषय देश, समाज या उससे सम्बन्धित अन्य विषय नहीं होता है। किन्तु ऐसा नहीं है उनका सरोकार समाज और राष्ट्र से भी बराबर रहा है। मन्नू भंडारी का 'महाभोज', महाश्वेता देवी का 'जंगल के देवदार', कृष्णा सोबती का 'जिन्दगीनामा', कुरेतुल एन हैदर का 'आग का दरिया', प्रभा खैतान का 'छिन्न मस्ता', नासिरा शर्मा का 'जिन्दा मुहावरे', चित्रा मुद्गल का 'आवाँ', मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' आदि उपन्यास इस संदर्भ में विशेष रूप से

दृष्टव्य हैं।

साठोतरी दशक की प्रसिद्ध लेखिका मृदुला गर्ग का 'चित्तकोबरा' तथा कृष्णा सोबती का 'मित्रो मरजानी' उपन्यास अपने साहसी यौन–वर्णन के कारण चर्चित रहे हैं। राजी सेठ के 'तत–सम' और 'निष्कवच' उपन्यासों में नारीवादी स्वर मुखर न होते हुए भी एक विशिष्टता लिए हुए है, जो उन्हें लीक से हटकर एक अलग संवेदना के फलक से जोड़ते हैं।

हिन्दी साहित्य में पिछले पचास वर्षों में अनेकानेक परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए। अनेक नए आन्दोलन नई धुरी के रूप में साहित्य की दुनिया में सम्मिलित हुए। जिस खामोशी ने नारी को कैद कर रखा था वह अब तार्किकता और प्रश्नाकुलता की तरफ बढ़ रही है। नारीवादी विमर्श भी इन्हीं में से एक है। आज नारीवाद की नयी भाषा, नया दृष्टिकोण सर्वत्र नजर आ रहा है। सम्पूर्ण साहित्य की अनेक विधा में नारी लेखन सहजता, गंभीरता और बिना किसी अवरोध के अपनी तकलीफों, विषादों और व्यथाओं को व्यक्त कर रहा है। निश्चित ही यह बदलाव क्रांतिकारी बदलाव है।

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भावबोध से उत्प्रेरित साहित्य की रचना में सबसे महत्त्वपूर्ण हाथ नारी चेतना का रहा है। प्रश्न उठता है कि यह नारी चेतना आखिर है क्या ? चेतना का सम्बन्ध निजी जीवनदृष्टि से होता है जिसके द्वारा इतिहास, संस्कृति और मानवीय सम्बन्धों को पुनः विश्लेषित किया जाता है। कह सकते हैं कि जो दृष्टि नारी की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि के तिलिस्म को तोड़े वह नारी चेतना है। यह चेतना स्त्री पुरुष दोनों में हो सकती है। इसका संबंध वर्ग, वर्ण, धर्म या लिंग से नहीं, दृष्टि से है जो अनुभूति की ऐतिहासिक, सामाजिक और वैयक्तिक यात्रा में से विकसित होती है। मृदुला गर्ग के अनुसार अंग्रेजी के 'फेमिनिज्म' शब्द का सार्थक अनुवाद नारी चेतना ही है। "हर वह स्त्री पुरुष फेमिनिस्ट माना जाना चाहिए जो नारी चेतना या दृष्टि से सम्पन्न हो। चूँकि हम दृष्टि या चेतना की बात कर रहे हैं, लिंग की नहीं इसलिए हमें यह मानने से कतई एतराज नहीं है कि नारी चेतना से सम्पन्न साहित्य स्त्री पुरुष दोनों रच सकते हैं।"[6]

"मैं तत्काल तीन ऐसी फेमिनिस्ट कहानियों का जिक्र कर सकती हूँ जो मर्दों की लिखी हुई हैं। अरसे से मैं रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'स्त्रीरेर पत्र' का उदाहरण देती आयी हूँ। यह हिन्दी की कहानी नहीं है पर भारतीय साहित्य की अमूल्य फेमिनिस्ट कहानी जरूर है और यह उस समय लिखी गई थी जब पश्चिम में भी कथा–साहित्य में नारी चेतना का प्रवेश नहीं हुआ था। वैसे भी ठाकुर की कहानियों के अनुवाद इस तरह हमारे मानस के अंग बन चुके हैं कि उनका प्रभाव हिन्दी की सम्पूर्ण साहित्यिक चेतना पर पड़ता रहा है। इस कहानी में एक जमींदार की पत्नी, पति से इसलिए दूर रहने चली जाती है क्योंकि घर में पलने वाली गरीब रिश्तेदार लड़की से उसका निर्मम आचरण उसे ग्राह्य नहीं है। उस लड़की को वह बेटी बनाकर साथ ले जाती है। निहायत गैर नुमाइशी ढंग से वह, यह सब, अपने पति को लिखे पत्रा में जतलाती है। यही कहानी का कथानक है। यह विद्रोह का उत्कर्ष है और नारी चेतना का ज्वलंत उदाहरण है।[7]

किसी भी लेखक की रचना अनुभूति और भावबोध की उर्वर भूमि से जन्म लेती है तर्क और विचार की बंजर धरती से नहीं। वह अपने आसपास के परिवेश से संवाद कर रहा होता है। नारी लेखन को यदि हम विशेषण के रूप में ग्रहण करें तो निश्चय ही अस्तित्व में आने से पहले उनका लेखन विचार में बंधा होगा और विचार चेतना से अनुस्यत हुआ होगा। चेतना एक ऐसी मूल्यपरक इकाई है जो परिवेशगत् दबावों के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। चेतना मात्र ऐतिहासिक अथवा समाज शास्त्रीय खोज तक सीमित नहीं रहती वरन् मानव समूहों के साथ परस्पर संबंधों के स्वरूप और समीकरणों इतिहास और भविष्य की पहचान भी कराती है।

नारी लेखन के मूल में नारी चेतना और संवेदना का यही छोटा–सा किन्तु महत्त्वपूर्ण बीज है और यही कारण है कि नारी लेखन एक सामाजिक प्राणी की हैसियत से स्त्री के मानवीय अधिकारों की संघर्षपूर्ण मांग करने वाला

साहित्य है। मानवीय अधिकारों की संघर्षपूर्ण मांग करने वाला साहित्य है। लेखक कोई भी हो सकता है यह आवश्यक नहीं है कि वह स्त्री है या पुरुष। यह भी आवश्यक नहीं है कि महिला केन्द्रित रचना 'नारी लेखन' ही हो। बेशक, चेतना आक्रोश को जन्म देती है लेकिन हर आक्रोश चेतना का वाहक नहीं होता है। हुक्मरानों द्वारा घोषित और प्रमाणित अधूरेपन के खिलाफ सार्थक लड़ाई लड़कर अपने को सम्पूर्णता में पाने का जज्बा केवल नारी–साहित्यकारों के पास ही है। सामाजिक सच्चाइयों और समाज शास्त्रीय आँकड़ों को जब वे निर्विकार दृष्टि से देखती हैं तो रचना अपने आप ही सृजनात्मक ऊँचाइयों पर पहुँच जाती है।

'हिन्दी में 'नारी लेखन' को लेकर दो अलग–अलग विचारधारायें परिलक्षित होती हैं। आलोचकों का एक वर्ग महिला लेखन से पूर्णतः असंतुष्ट है तो आलोचकों का दूसरा वर्ग नारी लेखन, उसके भविष्य, उसकी दशा और दिशा को लेकर आस्थावान भी है। बहुत से आलोचक आज भी नारी लेखन को 'स्त्रैण लेखन' कहकर उसे अधिक महत्त्व नहीं देते हैं। बकौल डॉ. नामवर सिंह के "महिला लेखन में सम्पूर्ण समाज की अभिव्यक्ति नहीं होती। दरअसल ऐसा लेखन छोटे समुदायों के हितों में रखकर किया जाता है। ऐसा साहित्य अर्द्ध–साहित्य को प्रतिबिम्बित करता है। यह लेखन तात्कालिक प्रतिक्रिया का परिणाम है। जबकि साहित्य का मूल स्वरूप मानव मुक्ति प्रदान करने वाला है। खण्ड–खण्ड में मुक्ति साहित्य का लक्ष्य नहीं है।"[8]

पिछले चार–पाँच दशकों के नारी लेखन ने कुछ तीखे, ज्वलंत प्रश्नों, अंतर्विरोधों और विरोधाभाषों का अपने लेखन के माध्यम से प्रस्तुत किया है जो नारी लेखन की एक अलग पहचान बनाने में सक्षम रही है। मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, गगन गिल, महाश्वेता देवी की रचनाओं में नारी के अधिकारों के प्रति सजगता दिखाई देती है। इनका लेखन आक्रामक, तीखा और पितृक समाज की कड़ी आलोचना से परिपूर्ण है। यह बदलाव इसी दशक में सर्वाधिक दृष्टिगत् हुआ। पिछले दशकों का नारी लेखन ऐसा नहीं था। पूर्व में होने वाले नारी लेखन में स्त्री की परम्परागत् छवि ही उभरकर सामने आई। उस लेखन में मानवीय संबंधों का निरुपण तो था किन्तु उसके पीछे जो राजनीतिक दृष्टि, विचारधारा तथा पितृसत्तात्मक नैतिक मूल्य काम करते थे उस पर विचार नहीं होता था हालांकि स्त्रीत्ववादी लेखिकाओं का यह दृढ़ विश्वास था कि कोई भी साहित्यिक कृति इन पितृसत्तात्मक मूल्यों, धर्म, कानून एवं नैतिकताओं से मुक्त, निरपेक्ष एवं तटस्थ नहीं होती। उनमें निहित मानवीय संबंधों में पितृसत्तात्मक सामाजिक मर्यादायें ही काम करती हैं। यहीं से नारी लेखन का एक नया स्वरुप उभरकर सामने आता है।

चौथे दशक में महादेवी वर्मा ने 'श्रृंखला की कड़ियाँ' लिखकर सिद्ध कर दिया कि वे नारी के संतप्त और अभिशप्त जीवन के प्रति कितनी चिंतित, प्रतिबद्ध और ईमानदार थीं। भारतीय नारी की समस्या को विवेचित करने वाले इस कार्य को आगे बढ़ाने की हिम्मत किसी भी नारी लेखिका ने नहीं की। गगन गिल स्वीकार करती हैं कि "आजादी के पहले और आज के महिला लेखन के तेवर में निश्चित ही बड़ा फर्क है। आजादी के पहले की सुभद्राकुमारी चौहान, महादेवी वर्मा, हर सामाजिक, रचनात्मक आन्दोलन में बराबरी के स्तर पर शामिल रहीं। अपने समय के सभी जोखिम उठाये। अपने समकालीन रचनाकारों के प्रति उनका सौहार्द जिसका विवरण हम उनके भावपूर्ण संस्मरणों में पढ़ते हैं, एक स्वस्थ परम्परा में ही सम्भव हो सका, जो दुर्भाग्य से आज नहीं है। आज हम दोमुँहे मापदण्डों वाले समाज में रहते हैं। चिड़ियों के साथ तो चिड़िया उड़ सकती है, लेकिन चिड़ीमारों के साथ?"[9]

अधिकतर नारी लेखन में उस नारी दृष्टि का अभाव है जो आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। "दुर्भाग्यपूर्ण यह भी है कि हमारे यहाँ महिला लेखिकाओं ने स्वयं भी बड़े जोखिम नहीं उठाये, न बीहड़ यात्रायें की, न अनजाने अनुभवों के समक्ष प्रस्तुत हुईं न अपनी विशाल साहित्यिक संपदा का ही ठीक से अध्ययन किया। क्या कारण है कि आजादी के बाद एक भी पुरुष या महिला महाश्वेता देवी जैसी नहीं हुई जो आदिवासियों की कथा लिख सके? इरावती कर्वे जैसी विदुषी नहीं हुई जो एक नया ऐतिहासिक, पौराणिक चिन्तन दे सके? हमारी अधिकांश महिलाएँ

'काउच' लेखन करती रहीं।"[10]

जब तक महिलाएँ लेखन की दुनिया के लिए संघर्ष नहीं करेंगी तब तक साहित्य में स्त्री दृष्टि या स्त्री चेतना का विकास संभव नहीं है। उनके लेखन में धार चाहिए, तीखापन एवं प्रतिरोध करने का साहस चाहिए यदि नारी समाज की सुप्त चेतना को जागृत करना है।

प्रायः आलोचक कहा करते हैं कि स्त्री लेखन में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों अथवा परिवार के बिखराव की ही अभिव्यक्ति होती है वह भी अत्यन्त सीमित तथा सतही रुपों में। प्रश्न यह नहीं है कि स्त्री लेखन घर, परिवार, बच्चे, स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के सीमित दायरे में बंटा हुआ है, बल्कि प्रश्न तो यह है कि इन सम्बन्धों का निरुपण वहाँ किस रुप में हो रहा है ? उसके पीछे कौन–सी नारी दृष्टि काम कर रही है ? परिवार की स्त्री के लिए एक अपना ही तानाशाही अनुशासन है, पैतृक व्यवस्था है। यदि नारी लेखन में ऐसा संघर्ष है तो वह उस लेखन की ताकत समझा जाना चाहिए, सीमित दायरा नहीं क्योंकि यही उसका अपना यथार्थ है जो किसी पुरुष का यथार्थ नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध में महादेवी जी ने ठीक ही कहा है – "अधिकार के इच्छुक व्यक्ति को अधिकारी भी होना चाहिए अर्थात् यदि स्त्रियाँ अपने अधिकारों, अपने स्वामित्व के अधिकारों से वंचित हैं तो क्या उनमें अधिकारों के प्रति चेतना भी है कि वे अधिकार उन्हें कैसे मिलेंगे, क्यों मिलेंगे और यदि मिलेंगे भी तो क्या भिक्षावृत्ति से।"[11]

महादेवी जी ने ठीक ही कहा है – "हमें न किसी पर जय चाहिए, न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुत्व चाहिए, न किसी पर प्रभुता। केवल अपना वह स्थान, वह स्वत्व चाहिए जिसका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगी।"[12]

दुनिया के इतिहास में जहाँ कभी भी स्त्री के स्वामित्व के अधिकारों की बात उठी है तो वह एक प्रखर स्त्री चेतना के द्वारा ही। उन स्त्रियों में अपने अधिकारों के प्रति जबर्दस्त चेतना थी इसलिए उन्होंने उन तमाम बराबरी के अधिकारों को भिक्षावृत्ति से न प्राप्त कर संघर्ष करके ही अर्जित किया। इसके लिए उन्हें बहुत बड़ी कीमत भी चुकानी पड़ी।

जब तक नारी–लेखन अन्याय, अत्याचार का प्रतिरोध नहीं करता, नारी की सुरक्षा के लिए संघर्ष नहीं करता तब तक वह यथास्थिति बाद का पक्षधर ही होगा। मेहरुन्निसा परवेज स्वीकारती हैं कि नारी के मौन को शब्द नारी ही दे सकती है। उसके दुख को नारी ही समझ सकती है। "महिला लेखन से महिलाओं को पूर्ण रुप से 'फीडबैक' मिलता है। नारी लेखन नारी मन की ही अभिव्यक्ति है। नारी ने नारी की गूँगी पीड़ा को लिखा, उजागर किया, उसके मौन को शब्द दिये। पुरुष लेखक के लिए नारी रुमानी ख्याल, यादों की मूरत थी। बेशक नारी लेखन ने पुरुष लेखकों के हाथ से उसकी सुन्दर, बेजबान गुडिया छीन ली है और रोती, चीखती, बिलखती, कलपती नारी को सामने ला खड़ा किया है।"[13]

"नारी लेखन यदि स्त्री समाज को सही दिशा दे रहा है, उसकी चेतना के विकास में सहायक सिद्ध हो रहा है तथा उसके अंदर स्वत्व के प्रति जागरुकता उत्पन्न कर रहा है तो बहुत अच्छा है क्योंकि अभी तक पुरुष लेखन ने ऐसा कुछ भी नहीं किया। महिला लेखन को अधिकतर समीक्षक मुख्यधारा के लेखन का एक किंचित् दरिद्र बिरादर ही समझते हैं।"[14]

ऐसी बात नहीं है कि नारी लेखिकाओं की रचनाओं में नये संदर्भ नई समस्यायें या युग की टकराहटों की ध्वनि नहीं है बल्कि असल त्रासदी यह है कि समीक्षा के पास रचना में 'नये' को पकड़ पाने और समझाने योग्य भाषा का सही समाकलन अक्सर नहीं निकलता और नये संदर्भों को जाँचने के मानदंड भी उसके पास प्रायः नहीं है। मृणाल पाण्डे का मानना है कि "हमारे ज्यादातर समीक्षकों में नारीवाद की जो ठलुआ, रसहीन, संकीर्ण और अधकचरी समझ व्याप्त हैं, वह पूर्ववर्ती श्रृंगारिक रुझान के सिक्के का ही दूसरा पहलू है। इसके चलते महिला लेखन की पड़ताल और

स्थापित मानदण्ड इतने रूढ़िवादी ढंग से इस्तेमाल हो रहे हैं कि समीक्षा के अनुशासन को मानकर चलने की इच्छुक अधिकसंख्य लेखिकाओं की बौद्धिक बाढ़ मारी गई है, पुरस्कृत वे भले ही हुई हों।"[15]

आधुनिक समय की लेखिका अलका सरावगी, तेजी ग्रोवर, गगन गिल, कात्यायनी, गीतांजलि श्री की कृतियाँ स्त्री और उससे जुड़े संदर्भों को लेकर हमारी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष चेतना, हमारे सोच, हमारी कल्पना पर कई तरह से दबाव डालती हैं जिससे स्थूल शारीरिक सरोकार या चिन्ताएँ, व्यंग्य, सृजनात्मक असंतोष एवं विरोधाभास उतनी ही मात्रा में रहते हैं जितने कि हमारे जीवन में। खुद अपने आप और अपने युग से दोहरे संलाप की संभावना के चलते कई सशक्त महिला लेखन से एक प्रकार की अन्तरध्वनि उठती हुई लगती है।

यह अन्तरध्वनि लेखन की गहराई के साथ पाठक से भी धैर्यपूर्ण वयस्कता की मांग करती है। आज का नारी लेखन पुरुषार्थवादी या पिटी पिटाई समीक्षा का निरीह अनुगामी नहीं रहा है वह हर नये और परती जमीन तोड़ने वाले लेखन जैसा आक्रामक और सतर्क है। कृष्णा सोबती का 'डार से बिछुड़ी', ' जिन्दगी नामा', 'मित्रो मरजानी', 'ए लड़की' मन्नू भंडारी के 'महाभोज' जैसी नारीवादी लेखन ने नारी के दुख दर्द, उसके अभिशाप, संताप, द्वन्द्वों और तनावों, उसकी गूँगी पीड़ा के मौन को वाणी दी है। ऐसे लेखन के केन्द्र में नारी की भयावह समस्यायें हैं, पितृ सत्तात्मक मर्यादाओं की तीखी आलोचना है जिसने स्त्री समाज का खुला दमन किया है। कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, चित्रा मुद्गल, महाश्वेता देवी, नासिरा शर्मा, मेहरुन्निसा परवेज जैसी लेखिकाओं के लेखन में नारी मुक्ति के लिए जिस चेतना का विकास हो रहा है वह नारी समाज के लिए रामबाण जैसा है। जैसे–जैसे नारी लेखन रचनात्मक और आलोचनात्मक स्तर पर नारियों के लिए जबर्दस्त चेतना लगाने का काम करेगा उसी अनुरुप स्त्री की दासता से मुक्ति हो सकेगी।

निष्कर्ष : निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि नारीवादी साहित्य का काम समस्या को दर्शाना, दमन को चित्रित करना, महिलाओं को उस दमन से मुक्ति दिलाना, विद्रोही चरित्रों को खड़ा करना और यह दिखाना है कि वे अस्तित्व और पहचान की तलाश में हैं। वर्तमान में महिला लेखक पुरुषों की तुलना में अधिक लिख रही हैं। महिला लेखिकाओं की पहली प्राथमिकता अपने अस्तित्व और पहचान पर ज्यादा केंद्रित है।

संदर्भ सामग्री :

1. टी.डा.श्री लक्ष्मी, 2019, भारतीय उपन्यासों में नारी, गीता पुस्तक केंद्र, रामकोट, हैदराबाद, पृ.51
2. टी.डा.श्री लक्ष्मी, 2019, भारतीय उपन्यासों में नारी, गीता पुस्तक केंद्र, रामकोट, हैदराबाद, पृ.51
3. टी.डा.श्री लक्ष्मी, 2019, भारतीय उपन्यासों में नारी, गीता पुस्तक केंद्र, रामकोट, हैदराबाद, पृ.51
4. व्होरा आशारानी, 1994, नारी शोषण : आइने और आयाम, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, नयी दिल्ली, पृ.248
5. टी.डा.श्री लक्ष्मी, 2019, भारतीय उपन्यासों में नारी, गीता पुस्तक केंद्र, रामकोट, हैदराबाद, पृ.59
6. गर्ग मृदुला, मई 1993, आधुनिक हिन्दी कहानी : नारी चेतना, मर्द आलोचना, (हंस) पृ. 34
7. गर्ग मृदुला, मई 1993, आधुनिक हिन्दी कहानी : नारी चेतना, मर्द आलोचना, (हंस) पृ. 34
8. अमर उजाला, 12 दिसम्बर 1999
9. इंडिया टूडे, गिल गगन, 1996, साहित्य वार्षिकी, पृ. 20
10. इंडिया टूडे, गिल, गगन, 1996, साहित्य वार्षिकी, पृ. 20
11. वर्मा, महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कडियाँ, अपनी बात, भूमिका से पृ. 23
12. वर्मा, महादेवी, श्रृंखला की कडियाँ, अपनी बात, भूमिका से पृ. 23
13. परवेज, मेहरुन्निसा परवेज, साहित्य वार्षिकी, पृ. 27
14. पाण्डेय, मृणाल, मार्च 2001, अन्दर से पानियों का सपना, (हंस) पृ. 69
15. पाण्डेय, मृणाल, मार्च 2001, अन्दर से पानियों का सपना, (हंस) पृ. 70